2009,8 एस.सी.आर 701

जसवन्त और अन्य

बनाम्

राजस्थान राज्य

(आपराधिक अपील सं0 1013/2009)

13 मई, 2009

एस.बी. सिन्हा एवं साईरिक जोसेफ जे.जे,

दंड प्रक्रिया संहिता, 1973–एस. 193– सत्र न्यायालय द्वारा अपराध का संज्ञान– एफ.आई.आर में नामजद अभियुक्तों के विरूद्ध संज्ञान लिये जाने का आदेश– सन्दर्भित अभियुक्त फरार है तथा उनके खिलाफ अनुसंधान लंबित है– स्थिरताः– आयोजितः– जबतक अनुसंधान पूर्ण नहीं हो जाता या साक्ष्य अीिलेख पर नहीं लाया जाता, सत्र न्यायाधीश ना तो धारा 193 ना ही धारा 319 के तहत क्षेत्राधिकार का प्रयोग कर सकता है– अभियुक्त के विरूद्ध अनुसंधान लंबित था और पूर्ण नहीं हुआ था– ऐसे में यह नहीं कहा जा सकता कि पुलिस रिर्पोट दाखिल कर दिया गया है– यह इस आधार पर आगे बढ़ी है कि अभियुक्त के विरूद्ध आरोप पत्र दाखिल नहीं किया गया था– इस प्रकार, अभियुक्त के विरूद्ध आरोप गठन करने का आदेश रद्द कर दिया गया– हालॉकि, चूँकि अभियुक्त उपस्थित हो चुके हैं इसलिए अनुसंधानकर्ता को एकत्र किये गये सामग्री के आधार पर अंतिम प्रपत्र दाखिल करना होगा। अपीलकर्ताओं एवं अन्य के विरूद्ध दंड संहिता के तहत अपराध कारित करने के लिए प्राथमिकी दर्ज किया गया था। अनुसंधानकर्ता द्वारा आरोप पत्र दाखिल किया गया। अपीलकर्ताओं को फरार दिखाया गया था और उनके विरूद्ध अनुसंधान लंबित था। अपराध का संज्ञान लिया गया, यघपि कि अपीलकर्ता के विरूद्ध अपराध का कोई संज्ञान नहीं लिया गया था। मजिस्ट्रेट द्वारा धारा 209 द0प्र0सं0 के तहत मामला सत्र न्यायाधीश को दौरा सुपुर्द कर दिया गया। सत्र न्यायाधीश द्वारा अपीलकर्ताओं सहित प्राथमिकी में नामजद सभी अभियुक्तगण के विरूद्ध आरोप का गठन किया गया। अपीलकर्ता ने उनके विरूद्ध संज्ञान लेने के आदेश को चुनौती दिया। सत्र न्यायाधीश द्वारा आवेदन को खारिज कर दिया गया। उच्च न्यायालय द्वारा भी पुनरीक्षण आवेदन को खारिज कर दिया गया। इसलिए वर्तमान अपील लाया गया।

अपील को अनुमति देते हुए, न्यायालय ने मानाः–

1.1 संज्ञान अपराध का लिया जाता है, किसी अपराधी के विरूद्ध नहीं। हॉलाकि दं0प्र0सं0 की धारा 193 सत्र न्यायालय को मूत्र क्षेत्राधिकार वाली अदालत के रूप में संज्ञान लेने से रोकती है। यद्यपि कि मजिस्ट्रेट के न्यायालय के पास यह शक्ति होती है। जब पुलिस रिर्पोट दाखिल की जाती है तो केवल संबंधित मजिस्ट्रेट को ही अपराध का संज्ञान लेने का अधिकार होता हैं। जब प्राथमिकी में नामित कुछ आरोपियों के संबंध में अनुसंधान लंबित है तो यह नहीं कहा जा सकता है कि पुलिस रिर्पोट सक्षम न्यायालय के समक्ष दाखिल किया गया है। संहिता की धारा 173(2) अपराध(8) के प्रावधानों मं यह परिकल्पना की गई है कि अंतिम रिपोर्ट केवल तभी दाखिल

की जा सकती है जब अनुसंधान पूर्ण की जा चुकी हो, उससे पहले नहीं। ख्पैरा 12 तथा 14 , ख्12.ए–सी,

रघुवंश दुबे बनाम् बिहार राज्य ए.आई.आर 1967 एस.सी 1167, संदर्भित किया गया।

1.2 किसी अपराध का संज्ञान लेने की शक्ति के अभाव में सत्र न्यायाधीश केवल दं0प्र0स0 की धारा 319 में निहित प्रावधान का सहारा ले सकते थे। उक्त प्रावधान को आकर्षित करने के उद्देश्य से सत्र न्यायालय को इसके तहत प्रदत्त असाधारण शक्ति को ध्यान में रखते हुए, अतिरिक्त अभियुक्तों को बुलाने का आदेश केवल विचारण के दौरान अदालत के सामने लाए गए कुछ साक्ष्य के आधार पर पारित किये जा सकते थे। इसलिए, ऐसी शक्ति का प्रयोग केवल तभी किया जा सकता है जब ऐसा कोई मामला बनता है। उस संबंध में विद्वान सत्र न्यायालय के द्वारा बुद्धि का उचित प्रयोग अनिर्वाय है। ख्पैरा 15 और 16, ख्12.डी–सी,

रंजीत सिंह बनाम् पंजाब राजय (1998) 7 एस.सी.सी 149, गुड़िया उर्फ तबस्सुम ताकीर एवं अन्य बनाम् बिहार राज्य (2007)8 एस.सी.सी 227 तथा गंगुला अशोक बनाम् आंध्र प्रदेश राज्य (2000)2 एस.सी.सी 504,

1.3 ऐसा प्रतीत होता है कि विद्वान सत्र न्यायाधीश ने निर्देश जारी किया है कि आरोप पत्र साक्ष्य न्यायालय के समक्ष दायर किया जाए। यहां तक कि ऐसा निर्देश भी निर्विवाद रूप से अवैध है। सत्र न्यायालय को इस कानूनी वाधा के आलावा कि वह अपने मूल अधिकार क्षेत्र का प्रयोग करते हुए किसी अपराध का संज्ञान नहीं ले सकता, अन्यथा उसे भी अनुसंधान अधिकारी को आरोप पत्र दाखिल करने का निर्देश देने का अधिकार नहीं था। ख्पैरा 17, ख्13–जी–एच 714.ए,

1.4 अदालत में निहित किसी अपराध का संज्ञान लेने की शक्ति आपराधिक प्रक्रिया संहिता की धारा 190 में निहित प्रावधानों द्वारा सीमित है। यह अपनी शक्ति का प्रयोग केवल तभी कर सकता था जब वह संतुष्ट हो कि एक या कोई अन्य खंड आकर्षित होता है। इस प्रकृति के मामले में माना जाता है कि संज्ञान लेने की शक्ति धारा 190 की उपधारा (1) के खंड (बी) से उत्पन्न होती है। ख्पैरा 18, ख्14.ए–बी,

1.5 अपीलकर्ताओं के विरूद्ध अनुसंधान लंबित था। यह पूर्ण नहीं हुआ था। यदि यह पूर्ण नहीं हुआ था, तो दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 173 की उपधारा (2) में निहित विधिक आवश्यकताएं पूरी नहीं हुई थी। यह ऐसा मामला नहीं है जहॉ न्यायालय संहिता की धारा 19(ए) एवं (सी) के तहत अपनी शक्ति का प्रयोग करके अपराध का संज्ञान ले सकता था। इसलिए इस आधार पर आगे बढ़ना होगा कि अपीलकर्ताओं के विरूद्ध कोई आरोप पत्र दाखिल नहीं किया गया था। ख्पैरा 19, ख्14.सी–ई,

अभिनंदन झा एवं अन्य बनाम् दिनेश मिश्रा। (1967)3 एस.सी.आर 668, संदर्भ

1.6 एक अनुसंधान अधिकारी की अनुसंधान पूर्ण करने की शक्ति एक वैधानिक शक्ति है। मजिस्ट्रेट का यह कर्तव्य है कि निष्पक्ष अनुसंधान किया जाए जैसा कि देखा गया है (जिसकी शुद्धता पर प्रश्न

किया जा सकता है)। लेकिन फिर भी मजिस्ट्रेट के पास अनुसंधान अधिकारी को आरोप पत्र दाखिल करने का निर्देश देने का कोई अधिकार श्रेत्र नहीं होगा। ख्पैरा 20, ख16.बी–डी,

निशार एवं अन्य बनाम् उ.प्र0 राज्य (1995)2 एस.सी.सी 23,

माना गया, अनुप्रयोग्य

सकिरी वसु बनाम् उ.प्र0 राज्य और अन्य (2008)2 एस.सी.सी 409, ख्सम्राट बनाम् नजीर अहमद ए.आई.आर 1945 पी.सी 18 आर.एन चटर्जी बनाम् हवलदार केदार सिंह (1970)1 एस.सी.सी 496 एम.सी अब्राहम बनाम् महाराष्ट्र राज्य (2003)2 एस.सी.सी 649 किशुन सिंह बनाम् बिहार राज्य (1993)2 एस.सी.सी 16 और धरम पाल एवं अन्य बनाम् हरियाणा राज्य तथा अन्य (2004) 13 एस.सी.सी 9, सन्दर्भित।

1.7 जब तक अनुसंधान पूर्ण नहीं हो जाता या साक्ष्य अभिलेख में नहीं लाया जाता है, सत्र न्यायालय या तो द0प्र0सं0 की धरा 193 ना ही द्र0प्र0सं0 की धारा 319 के तहत अपने अधिकार का प्रयोग कर सकते थे। अतः अपीलकर्ताओं के विरूद्ध आरोप गठन करने का आदेश उपरोक्त करणो से रद्द करने योग्य है। हालॉकि हम इस तथ्य को ध्यान में रखते हुये कि अपीलकर्ता पहले ही पेश हो चुके हैं और अब फरार नहीं हैं, हम अनुसंधानकर्ता अधिकारी को अनुसंधान के दौरान एकत्र की गई सामग्री के आधार पर अंतिम प्रतिवेदन जमा करने का निर्देश देते है। सम्बंधित स्थिति में सत्र न्यायाधीश यदि चाहें तो दं0प्र0सं की धारा 319 के तहत अपने क्षेत्राधिकार का प्रयाग अपीलकर्ताओं के लिए कर सकते हैं, उसमें र्निधारित प्रक्रिया का सहारा लिया जाना चाहिए। ख्पैरा 22 और 23, ख18.डी.जी,

संदर्भित केस लॉ

ए.आई.आर 1967 एस.सी. 1167	संदर्भित किया गया	पैरा–12
(1998) 7 एस.सी.सी 149	विश्वास किया गया	पैरा–15
(2007) 8 एस.सी.सी 227	विश्वास किया गया	पैरा–15
(2000)2 एस.सी.सी 504	विश्वास किया गया	पैरा–16
(1967)3 एस.सी.सी 668	संदर्भित किया गया	पैरा–19
(2008)2 एस.सी.सी 409	संदर्भित किया गया	पैरा–20
ए.आई.आर 1945 एस.सी.सी 496	संदर्भित किया गया	पैरा–20
(1970)1 एस.सी.सी 496	संदर्भित किया गया	पैरा–20
(2003)2 एस.सी.सी 649	संदर्भित किया गया	पैरा–20
(1993) 2 एस.सी.सी 16	संदर्भित किया गया	पैरा–20
(1995) 2 एस.सी.सी 23	अप्रयोज्य	पैरा–20

(2004) 13 एस.सी.सी 9 संदर्भित किया गया पैरा–21

आपराधिक अपील न्यायनिर्णय आपराधिक अपील 2009 का संख्या 2013।

राजस्थान उच्च न्यायालय, जयपुर पीठ के दिनांक 12.04.2007 के निर्णय और आदेश, एस.सी 2002 की आपराधिक पुनरीक्षण याचिका संख्या 863।

सुशील कुमार जैन, पुनीत जैन (प्रतिमा जैन के लिए) अपीलार्थी।

प्रशांत भगवती (अंसार अहमद के लिए) उत्तरदाता।

न्यायालय का निर्णय दिया गया, द्वारा एस.बी सिन्हा, जे.1,

2. यहॉ विचारण के लिए यह प्रश्न उठता है कि क्या सत्र विचारण शुरू और पूरी हो सकती थी, हालांकि अपीलकर्ताओं के विरूद्ध संज्ञान नहीं लिया जा सका था।

3. यद्यपि, उक्त प्रश्न पर ध्यान देने से पहले, हम मामले के निर्विवाद तथ्य पर ध्यान दें।

अपीलकर्ताओं को भारतीय दंड संहिता की धारा–302, 147, 302/149, 324, 326 और 323 के तहत अपराध करने के लिए प्रथम सूचना रिपोर्ट में नामित किया गया था। इसके पश्चात् 12..12.1993 को एक आरोप पत्र प्रस्तुत किया गया, जिसमें उन्हें फरार दिखाया गया। यद्यपि कि, यह माना जाता है कि उनके खिलाफ अनुसंधान पूर्ण नहीं हुआ था। हालॉकि, अपराध का संज्ञान लिया गया था। मामला दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 209 के तहत सत्र न्यायालय को दौरा सुपुर्द भी कर दिया गया था। यद्यपि अनुसंधान अधिकारी द्वारा प्रस्तुत आरोप पत्र के खिलाफ कोई संज्ञान नहीं लिया गया थ, दिनांक 28.04.1993 के आदेश के आधार पर, मामले को सत्र न्यायाधीश को दौरा सुपुर्द कर दिया गयाथा। अपीलकर्ताओं सहित प्राथमिकी में नामित सभी पॉच अभियुक्तों के विरूद्ध आरोप का गठन किया गया।

अपीलकर्ताओं ने 30.07.2002 को उसके आस पास एक आवेदन दाखिल किया कि उनके खिलाफ कोई आरोप तय नहीं किया जाए, अन्य बतों के अलावा, यह तर्क दिया गया कि दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 193 के अनुसार मजिस्ट्रेट द्वारा मामले को सुदुर्द किये बिना सत्र न्यायालय को किसी भी अपराध का संज्ञान लेने का मूल श्रेत्राधिकार प्राप्त नहीं था, उनके विरूद्ध संज्ञान लेने का कथित आदेश अवैध था।

4. हालांकि, 12.08.2002 के एक आदेश द्वारा सत्र न्यायाधीश ने उक्त आवेदन को यह कहते हुए खारिज कर दिया कि यद्यपि सत्र न्यायालय के पास किसी अभियुक्त का संज्ञान लेने और कथित आधार पर मुकदमा चलाने के लिए कोॅ मूल क्षेत्राधिकार नहीं था। परिस्थितियॉ भी यही मॉग करती हैं उक्त कथित परिस्थितियॉ है–

1. दिनांक 12.02.1993 को पुलिस ने अभियुक्तों को फरार दिखाकर उनके विरूद्ध आरोप पत्र दाखिल किया है।

2. जब मजिस्ट्रेट की अदालत ने मामले को सत्र न्यायालय को सौप दिया था, उस समय आवेदको/अभियुक्तों को अग्रिम जमानत पर रिहा कर दिया गया था।

3. दिनांक 22.05.1993 को आवेदक/अभियुक्त व्यक्ति अतिरिक्त जिला एवं सत्र न्यायाधीश, किशनगढ़बास की अदालत में उपस्थित हुए थे और अपनी उपस्थिति दर्ज कराने के लिए प्रार्थना की थी।

4. कोर्ट ने गलती से इस बात पर ध्यान नहीं दिया कि आरोपी व्यक्तियों के खिलाफ पूरक आरोप पत्र पेश नहीं किया गया था, इस चूक के लिए कुछ हद तक आरोपी भी जिम्मेदार हैं। क्योंकि सबसे पहले वे अपनी उपस्थिति उर्ज कराने के लिए स्वयं अदालत में उपस्थित हुए थे। दूसरे उन्होंने मामले की सुनवाई पूरी होने तक पूरक आरोप पत्र पेश नहीं करने के संबंध में अदालत का ध्यान आकर्षित नहीं किया था।

5. आवेदकों/अभियुक्तों के विचारण में कोई कमी नहीं रही। आरेपी व्यक्तियों के खिलाफ आरोप तय किया गया था और नियमानुसार साक्ष्य दर्ज किए गए हैं। विद्वान अधिवक्ता ने गवाही के दौरान गवाहों से प्रतिपरीक्षण किया। इस प्रकार आरोपी व्यक्तियों का बचाव पक्षपात पूर्ण नहीं है।

6. यह सही है कि मजिस्ट्रेट की अदालत को मामले को सत्र न्यायालय में भेजने से पहले धारा 207 आपराधिक प्रक्रिया संहिता के प्रावधानों का पालन करना होगा। इन प्रावधानों के तहत आरोप पत्र की प्रति बचाव पक्ष को दी जाती है और बाकी प्रावधान प्रक्रियात्मक होते हैं, वर्तमान मामले में आरोप पत्र की प्रति आवेदकों/अभियुक्त व्यक्तियों को नहीं दी गई है। लेकिन बचाव पक्ष की दलीलों से यह स्पष्ट है कि अभियोजन पक्ष मामले की प्रति उनके पास मौजूद हैं।

यह माना गया था। वर्तमान मामले में दो व्यक्तियों की हत्या की गई है। ऐसे मामले में केवल तकनीकी दोष के आधार पर आरोपी व्यक्तियों के खिलाफ कार्यवाही बंद करना उचित होगा। आरोपी व्यक्तियों का पूरा मुकदमा चल चुका है।

उपरोक्त विशेष परिस्थितियों को देखते हुए, मेरी राय में आवेदकों/अभियुक्त व्यक्तियों के विरूद्ध कार्यवाही बंद करना उचित नहीं होगा। जबकि अभियोजन को तत्काल सक्षम न्यायालय के समक्ष आरोप पत्र प्रस्तुत करने का निर्देश देना उचित होगा, नियमानुसार अनुपूरक आरोप पत्र समर्पित करने हेतु सक्षम न्यायालय को निर्देशित किया जाता है। यह स्पष्ट किया जाता है कि पूरक आरोप पत्र प्राप्त होने के बाद आवेदकों/अभियुक्त व्यक्तियों पर पुनः मुकदमा चलाने की कोई आवश्यकता नहीं है। मामले का निर्णय इस तथ्य को स्वीकार करते हुए किया जाएगा कि 22.05.1993 को आवेदक/अभियुक्त व्यक्ति पूरक आरोप पत्र पेश करने के बाद अतिरिक्त जिला एवं सत्र न्यायाधीश, किशनगढ़बास की अदालत में उपस्थित हुए थे।

5. इसके विरूद्ध दायर पुनरीक्षण आवेदन को उच्च न्यायालय द्वारा आक्षेपित निर्णय के आधार पर खारिज कर दिया गया हैं

6. अपीलकर्ता की ओ से उपस्थित विद्वान अधिवक्ता श्री सुशील कुमार जैन का कहना हे कि सत्र न्यायालय के पास दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 193 में निहित प्रावधानों को ध्यान में रखते हुए किसी अपराध का संज्ञान लेने का कोई मूल अधिकार क्षेत्र नहीं है। आक्षेपित आदेश पूर्णतया टिकाउ नहीं हैं यहॉ तक कि विद्वान मुख्य न्यायिक मजिस्ट्रेट भी अपीलकर्ता के खिलाफ संज्ञान नहीं ले सकते थे क्योंकि आरोप पत्र में उनके खिलाफ अनुसंधान लंबित दिखाई गई थी और अपीलकर्ता को फरार दिखाया गया था।

विद्वान सत्र न्यायाधीश इस तथ्य को ध्यान में रखते हुए केवल आपराधिक प्रक्रिया संहिता की धारा 319 का सहारा ले सकते थे और मामले को ध्यान में रखते हुए दिनांक 12.02.2008 के आदेश को पूरी तरह से अवैध और क्षेत्राधिकार के बिना माना जाना चाहिए।

7. दूसरी ओर, प्रतिवादी की ओर से उपस्थित विद्वान अधिवक्ता श्री प्रशांत भगवती का तर्क है कि इस तथ्य को ध्यान में रखते हुए कि किसी अपराध के संबंध में संज्ञान लिया गया है और मामले के संबंध में दौरा सुर्पुदगी का आदेश पारित किया गया है और ना कि अपराधियों के विरूद्ध, आक्षेपित निर्णय में किसी हस्तक्षेप की आवश्यकता नहीं है।

8. उपरोक्त प्रश्न पर विचार करने से पहले, हम दंड प्रक्रिया संहिता के प्रासंगिक प्रावधानों अर्थात् धारा 190, 193 और 209 पर ध्यान दे सकते हैं, जो इस प्रकार हैः–

190. मजिस्ट्रेटों द्वारा अपराधों का संज्ञान–(1) इस अध्याय के प्रावधानों के अधीन, प्रथम श्रेणी का कोई भी मजिस्ट्रेट और उपधारा (2) के तहत इस संबंध में विशेष रूप से सशक्त कोई भी द्वितीय श्रेणी का मजिस्ट्रेट किसी भी अपराध का संज्ञान ले सकता है।

(ए) उन तथ्यों की शिकायत प्राप्त होने पर जो ऐसे अपराध का गठन करते हैं,

(बी) ऐसे तथ्यों की पुलिस रिपोर्ट पर,

(सी) पुलिस अधिकारी के अलावा किसी अन्य व्यक्ति से प्राप्त जानकारी पर या अपने स्वयं के ज्ञान पर कि ऐसा अपराध किया गया है।

(2) मुख्य न्यायिक मजिस्ट्रेट द्वितीय श्रेणी के किसी भी मजिस्ट्रेट को ऐसे अपराधों की उप धारा (1) के तहत संज्ञज्ञन लेने का अधिकार दे सकता है, जिनकी जांच या विचारण करना उसकी क्षमता के भीतर है।

193 सत्र न्यायालयों द्वारा अपराधों का संज्ञान– इस संहिता या तत्समय लागू किसी अन्य कानून द्वारा अन्यथा स्पष्ट रूप से प्रदान किए जाने के अलावा कोई भी सत्र न्यायालय मूल क्षेत्राधिकार वाले न्यायालय के रूप में किसी भी अपराध का संज्ञान तब तक नहीं करेगा जब तक कि इस संहिता के तहत एक मजिस्ट्रेट द्वारा मामला सुपुर्द नहीं किया गया है।

209. मामले को सत्र न्यायालय को सुपुर्द करना, जब अपराध विशेष रूप से उसके द्वारा विचारणीय हो, जब पुलिस रिपोर्ट पर या अन्यथा शुरू किए गए मामले, में आरोपी मजिस्ट्रेट के सामने पेश होता है या लाया

जाता है और मजिस्ट्रेट को यह प्रतीत होता है कि अपराध है सत्र न्यायालय द्वारा विशेष रूप से विचारणीय वहः–

(ए) धारा 207 या धारा 208 के प्रावधानों का अनुपालन करने के बाद जैसा भी मामला हो, मामले को सत्र न्यायालय को सुपुर्द करेगा और जमानत से संबंधित इस संहिता के प्रावधानों के अधीन आरोपी को तब तक हिरासत में भेज देगा जब तक कि ऐसी सुपुर्दगी नहीं कर दी जाती है।

(बी) जमानत से संबंधित इस संहिता के प्रावधानों के अधीन, अभियुक्त को विचारण के दौरान और उसके समापन तक हिरासत में भेज देगा।

(सी) उस न्यायालय को मामले का रिकॉर्ड और दस्तावेज और लेख यदि कोई हों, भेजें, जिन्हें साक्ष्य के स्प में पेश किया जाना है।

(ड) सत्र न्यायालय को मामले की सुपुर्दगी के बारे में लोक अभियोजक को सूचित करें।

9. आरोप पत्र में निर्विवाद रूप से पांच व्यक्तियों के नाम हैं, (1) राम नारायण सिंह, (2) जसवंत सिंह, (3) चॉद सिंह, (4) नाहर सिंह और (5) श्रीमती मिश्री`दीव को निर्दिष्ट किया गया है कि जबकि जसवंत सिंह और चांद सिंह (यहॉ अपीलकर्ता) के नाम भगोड़े के रूप में दिखाए गए थे। दिनांक 17.04.1993 के एक आदेश द्वारा अपराध का संज्ञान केवल श्री राम नारायण, मिश्री देवी और नाहर सिंह के विरूद्ध लिया गया था।

10. अपीलकर्ताओं के खिलाफ न तो संज्ञान लेने का कोई आदेश पारित किया गया और न ही उनके नाम मामले को सत्र न्यायालय में सुपुर्दगी के आदेश में शामिल किए गए।

11. हमने यहां कथित विशेष परिस्थितियों पर ध्यान दिया है, जिन्हें विद्वान सत्र न्यायाधीश ने इस निष्कर्ष पर पहुंचने के लिए गिनाया है कि दोष, यदि कोई है, केवल तकनीकी है।

इसलिए विचार के लिए एक मात्र प्रश्न यह उठता है कि क्या मामले के विशिष्ट तथ्यों और परिसिथतियों में, अपीलकर्ता का विचारण पूरी तरह से अवैध है या केवल अनियमित है।

12. इसमें किसी भी प्रकार का संदेह या विवाद नहीं हो सकता कि संज्ञान किसी अपराध का लिया गया है, अपराधी के विरूद्ध नहीं।

रघुबंस दुबे बनाम बिहार राज्य ख्र.आई.आर 1967 एस.सी 1167, में जिस पर श्री भगवती ने भरोसा जताया था, इस न्यायालय ने निम्नानुसार माना हैः–

'' हमारी राय में एक बार मजिस्ट्रेट द्वारा संज्ञान ले लिया गया है, तो वह अपराध का संज्ञान लेता है, न कि अपराधियों का एक बार जब वह किसी अपराध का संज्ञान लेता है तो यह उसका कर्तव्य है कि वह यह पता लगाए कि वास्तव में अपराधी कौन हैं और एक बार जब वह आता है यह निष्कर्ष कि पुलिस द्वारा भेजे एग व्यक्तियों के अलावा कुछ अन्य व्यक्ति भी शामिल हैं, उन व्यक्तियों के खिलाफ आगे बढ़ना उसका कर्तव्य है। अतिरिक्त आरोपियों को बुलाना किसी अपराध का संज्ञान लेने से शुरू की गई कार्यवाही का हिस्सा है।''

13. उपरोक्त टिप्पणियॉ स्पष्ट रूप से नई संहिता की धारा 319 के समकक्ष पुरानी आपराधिक प्रक्रिया संहिता की धारा 251ए के तहत न्यायालय की शक्ति के प्रयोग के मामले में की गई थी। उक्त टिप्पणियॉ एक अतिरिक्त आरोपी के खिलाफ संज्ञान लेने के संदर्भ में की गई थी, जिसे एक परिवाद पत्र के आधार पर अपराध का संज्ञान लेने पर मजिस्ट्रेट द्वारा शुरू की गई कार्यवाही का हिस्सा माना गया था।

14. दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 193 हालांकि सत्र न्यायालय को मूल क्षेत्राधिकार वाली अदालत के रूप में संज्ञान लेने से रोकती है, यद्यपि मजिस्ट्रेट की अदालत के पास यह शक्ति है।

रघुबंस दुबे (सुप्रा) में संहिता की धारा 190 के (ए) और (सी) के अनुसार संज्ञान लिया गया जबकि इस मामले में उसका खंड (बी) आकर्षित होता है। जब कोई पुलिस रिपोर्ट दर्ज की जाती है, तो केवल संबंधित मजिस्ट्रेट को ही किसी अपराध का संज्ञान लेने का अधिकार होता है। यह नहीं कहा जा सकता कि पुलिस रिपोर्ट सक्षम अदालत के समक्ष दायर की गई है, जब प्रथम सूचना रिपोर्ट में नामित कुछ आरोपियों के संबंध में विचारण लंबित है। संहिता की धारा 173 की उपधारा (2) उसकी उपधारा (8) के प्रावधानों के अधीन यह पकिल्पना करती है कि अंतिम रिपोर्ट केवल तभी दालिख की जा सकती है जब अनुसंधान पूरी हो जाए, उससे पहले नहीं।

15. किसी अपराध का संज्ञान लेने की किसी शक्ति के अभाव में, सत्र न्यायाधीश, केवल आपराधिक प्रक्रिया संहिता की धारा 319 में निहित प्रावधानों का सहारा ले सकते थे। उक्त प्रावधान को आकर्षित करने के उद्देश्य से सत्र न्यायालय को इसके तहत प्रदत्त असाधारण शक्ति को ध्यान में रखते हुए, अतिरिक्त अभियुक्तों को बुलाने के आदेश केवल विचारण दौरान अदालत के सामने लाए गए कुछ सबूतों के आधार पर पारित किए जा सकते थे ख्रंणजीत सिंह बनाम् पंचाब राज्य ख (1998)7 एस.सी.सी 149, और गुड़िया उर्फ तबस्सुम ताकीर और अन्य बनाम् बिहार राज्य ख (1998)7 एस.सी.सी 227 देखें,

16. इसलिए, ऐसी शक्ति का प्रयोग केवल तभी किया जा सकता है, जब ऐसा कोई मामला बनता है। इस संबंध में विद्वान सत्र न्यायाधीश की ओर से बुद्धि का उचित प्रयोग अनिवार्य है।

गंगुला अशोक बनाम् आंध्र प्रदेश राजय में ख (2000)2 एस.सी.सी 504, इस अदालत ने कहाः—

10. संहिता की धारा 1993 को उपरोक्त पृष्ठभूमि में समझा जाना चाहिए। यह धारा सभी सत्र न्यायालयों पर मूल अधिकार क्षेत्र की अदालत के रूप में किसी भी अपराध का संज्ञान लेने के खिलाफ निषेधाज्ञा लगाती है। यह केवल तभी संज्ञान ले सकती है जब ''मामला'' एक मजिस्ट्रेट द्व ारा इसके लिए सुपुर्द किया गया है'', जैसा कि संहिता में प्रदान किया गया है। उपरोक्त निषेधाज्ञा के अपवाद के रूप में धारा 193 में दो खंडों का संकेत दिया गया हैं एक जब संहिता ने स्वयं संज्ञान लेने के संबंध में स्पष्ट भाषा में अलग—अलग प्रावधन किए हैं और दूसरा यह है कि जब किसी अन्य कानून ने ऐसा कानून के तहत अपराधों का संज्ञान लेने के संबंध में स्पष्ट भाषा में अलग—अलग प्रावधान किए हों। शब्द ''स्पष्ट रूप

से'' जो उन अपवादों को दर्शाते हुए 193 में नियोजित है, विधायी आदेश का संकेत है कि सत्र न्यायालय अनुभाग में निहित अंतर्विरोध से तभी हट सकता है जब इसे स्पष्ट और स्पष्ट शब्दों में अलग ढंग से प्रदान कियागया हो। दूसरे शब्दों में जब तक यह सकारात्मक और विशेष रूप से अलग ढंग से प्रदान नहीं किया जाता है, तब तक कोई भी सत्र न्यायालय सीधे किसी भी अपराध का संज्ञान नहीं ले सकता है, जब तक कि मामला मजिस्ट्रेट द्वारा उसे सौंपा न जाए।

11. न तो संहिता में और न ही अधिनियम में ऐसा कोई प्रावधान है, निहितार्थ से भी नहीं, कि निर्दिष्ट सत्र न्यायालय (विशेष न्यायालय) मामले के बिना मूल क्षेत्राधिकार के न्यायालय के रूप में अधिनियम के तहत अपराध का संज्ञान ले सकता है, बिना एक मजिस्ट्रेट द्वारा सुपुर्द किए। यदि ऐसा है तो यह सोने का कोई कारण नहीं है कि अधिनियम के तहत अपराधों के लिए आरोप–पत्र या शिकायत सीधे ऐसा विशेष अदालत में दायर की जा सकती है। अपराधिक अदालतों की पदानुक्रमित सेटिंग से यह समझा जा सकता है कि सत्र न्यायालय को एक श्रेष्ठ और विशेष दर्जा दिया गया है। इसलिए हम सोचते हैं कि विधायिका ने सोच–समझकर सत्र न्यायालय को उन सभी प्रारंभिक औपचारिकताओं को पूरा करने के काम से मुक्त कर दिया होगा जो मजिस्ट्रेटों को तब तक करनी होती हैं जब तक कि मामला सत्र न्यायालय को सौंप नहीं दिया जाता है।

17. ऐसा प्रतीत होता है कि विद्वान सत्र न्यायाधीश ने निर्देश जारी किया है कि आरोप पत्र सक्षम न्यायालय के समक्ष दायर किया जाए। जहां तक कि ऐसा निर्देश भी निर्विवाद रूप से अवैध है। सत्र न्यायालय को इस कानूनी बाधा के अलावा कि वह अपने मूल अधिकार क्षेत्र का प्रयोग करते हुए किसी अपराध का संज्ञान नहीं ले सकता अन्यथा उसे भी अनुसंधान अधिकारी को आरोप पत्र दाखिल करने का निर्देश देने का अधिकार नहीं था।

18. अदालत में निहित किसी अपराध का संज्ञान लेने की शक्ति आपराधिक प्रक्रिया संहिता की धारा 190 में निहित प्रावधानों द्वारा सीमित है। यह अपनी शक्ति का प्रयोग केवल तभी कर सकता था जब उसे संतुष्टि हो कि उसमें निहित कोई न कोई उपवाक्य आकर्षित है। इस प्रकृति के मामले में माना जाता है कि संज्ञान लेने की शक्ति धारा 190 की उपधारा (1) के खंड (बी) से उत्पन्न होती है।

19. हमने यहां पहले देखा है कि अपीलकर्ताओं के खिलाफ अनुसंधन लंबित थी। यह पुरा नहीं हुआ, यदि यह पुरा नहीं हुआ, तो दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 173 की उपधारा (2) में निहित वैधानिक आवश्यकताएं पूरी नहीं हुईं। यह ऐसा मामला नहीं है जहां अदालत संहिता की धारा 190 (ए) और (सी) अपनी शक्ति का प्रयाग करके अपराध का संज्ञान ले सकती थी। इसलिए हमें इस आधार पर आगे बढ़ना होगा कि अपीलकर्ताओं के खिलाफ कोई आरोप पत्र दायर नहीं किया गया था। भले ही अंतिम फॉर्म दाखिल किया गया हो, अदालत के पास तीन विकल्प थे जैसा कि अभिनंदन झा और अन्य बनाम् दिनेश मिश्रा ख(1967)3 एस.सी.सी 668, के मामले में देखा है, निम्नानुसारः–

''हमें इस मामले में विचार के लिए उठने वाले प्रश्न को उपर बताई गई परिस्थितियों के आलोक में देखना होगा। हम पहले ही अध्याय ग्प्ट की योजना के साथ–साथ रिशबड और इंदर सिंह मामले में इस न्यायालय की टिप्पणियों का उल्लेख कर चुके हैं यह राय बनाना कि अभियुक्त को मजिस्ट्रेट के समक्ष विचारण चलाने का मामला है या नहीं, पुलिस स्टेशन के प्रभारी अधिकारी पर छोड़ दिया गया हैं जहां तक हम देख सकते हैं, कोई स्पष्ट शक्ति नहीं है, जो हमले के तहत प्रकृति का आदेश पारित करने का अधिकार क्षेत्र देता है ओर न ही ऐसा कोई शक्ति निहित की जा सकती है। यदि मजिस्ट्रेट पुलिस द्वारा बनाई गई राय से सहमत नहीं हैं, तो रिपोर्ट स्वीकार करने के लिए मजिस्ट्रेट पर निश्चित रूप से कोई दायित्व नहीं है। उन परिस्थितियों में, यदि उसे अभी भी संदेह है कि कोई अपराध किया गया है, तो वह पुलिस की राय के बावजूद संहिता की धारा 190(1)(सी) के तहत संज्ञान लेने का हकदार हैं। हमारी राय में, वह प्रावधन है स्पष्ट रूप से यह सुनिश्चित करने का इरादा है कि अपराधियों को दंडित नहीं किया जा सकता है और न्याय तब भी लागू किया जा सकता है, जहां व्यक्तिगत रूप से पीड़ित व्यक्ति मुकदमा चलाने के लिए अनिच्छुक या असमर्थ हैं, या पुलिस, या तो लापरवाही से या वास्तविक त्रुटि के कारण एक रिपोर्ट प्रस्तुत करने में विफल रहती है, जिससे गठित तथ्य सामने आते हैं। इसलिए किसी अपराध का संज्ञान लेने का के लिए मजिस्ट्रेट को एक बहुत व्यापक शक्ति प्रदान की जाती हे, न केवल जब उसे किसी तीसरे व्यक्ति से अपराध के बारे में जानकारी मिलती है, बल्कि वहां भी जहां उसे जानकारी हो या जहां तक कि संदेह हो कि अपराध किया गया है, धारा 190(1)(सी) के तहत अपराध का संज्ञान लेने का अधिकार मजिस्ट्रेट के पास इस आधार पर है कि, अंतिम रिपोर्ट और उसके सामने रखे गए पुलिस रिकॉर्ड को ध्यान में रखते हुए, उसके पास इस पर संदेह करने का कारण है, एक आपराध किया गया है। इसलिए ये परिस्थितियॉ पुलिस से आरोप–पत्र मॉगने की मजिस्ट्रेट की शक्ति को भी स्पष्ट रूप से नकारात्मक कर देंगी, जब उन्होंने अंतिम रिपोर्ट प्रस्तुत कर दी हो। आध्याय ग्प्ट की पूरी योजना स्पष्ट रूप से इंगित करती है कि आरोपी पर मुकदमा चलाने के लिए कोई मामला है या नहीं, इस बारे में राय का गठन पुलिस स्टेशन के प्रभारी अधिकारी का है और वह राय निर्धारित करती है कि रिपोर्ट क्या है, धारा 170 के तहत, चार्ज–शीट या धारा 169 के तहत अंतिम रिपोर्ट। इसमें कोई संदेह नहीं है कि मजिस्ट्रेट के लिए यह खुला है, जैसा कि हमने पहले ही बताया है, पुलिस की राय को स्वीकार करना या उससे असहमत होना और यदि वह असहमत है तो वह हमारे द्वारा बताए गए पाठ्यक्रमों में से किसी एक को अपनाने का हकदार है। लेकिन वह पुलिस को आरोप–पत्र प्रस्तुत करने का निर्देश नहीं दे सकता, क्योंकि रिपोर्ट प्रस्तुत करना पुलिस द्वारा गठित राय पर निर्भर करता है, न कि मजिस्ट्रेट की राय पर। मजिस्ट्रेट पुलिस को जांच पर एक विशेष राय बनाने और ऐसी राय के अनुसार एक रिपोर्ट प्रस्तुत करने के लिए मजबूर नहीं कर सकता है। यह वास्तव में पुलिस के क्षेत्र में अतिक्रमण होगा और पुलिस को मजिस्ट्रेट के निर्णय के अनुरूप एक राय बनाने और निर्णय की प्रकृति के आधार पर धारा 169, या धारा 170 के तहत एक रिपोर्ट भेजने के लिए मजबूर करना होगा। संहिता के तहत ऐसा कार्य पुलिस पर छोड़ दिया गया है।

20. एक अनुसंधान अधिकारी की अनुसंधान पूरी करने की शक्ति एक वैधानिक शक्ति है। विद्वान मजिस्ट्रेट का कर्तव्य हो सकता है कि निष्पक्ष जांच की जाए जैसा कि साकिरी वासु बनाम् उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य में देखा गया है (जिसकी शुद्धता पर सवाल उठाया जा सकता है)। ख(2008)(2) एस.सी.सी 409,।

लेकिन फिर भी विद्वान मजिस्ट्रेट के पास जांच अधिकारी को आरोप–पत्र दायर करने का निर्देश देने का कोई अधिकार क्षेत्र नहीं होगा। यह कानूनी स्थिति सम्राट बनाम् नजीर अहमद ख्ए.आई.आर 1945 पी.सी 18, में स्पष्ट रूप से बताई गई है।

एक बार फिर आ.एन चटर्जी बनाम् हवलदार केनर सिंह ख(1970)(1) एस.सी.सी 496, में इस न्यायालय ने कहा।

''11. कई निर्णयों में इस बात पर जोर दिया गया है कि यह अत्यंत महत्वपूर्ण है कि न्यायपालिका को उन मामलों में पुलिस के साथ हस्तक्षेप नहीं करना चाहिए जो उनके प्रांत के भीतर है और जिनमें कानून उन पर जांच का कर्तव्य लगाता है। (सम्राट बनाम नाजी अहमद देखें)।''

एम.सी अब्राहम बनाम् महाराष्ट्र राजय ख(2003)2 एस.सी.सी 649, में यह कहा गया था.

17. ''इसलिए सिद्यांत अच्छी तरह से स्थापित हे कि यह अनुसंधान एजेंसी का काम है कि वह पूर्ण अनुसंधान के बाद मजिस्ट्रेट को एक रिपोर्ट सौंपे। अनुसंधान एजेंसी अरोपों को सही पाते हुए एक रिपोर्ट प्रस्तुत कर सकती है। यह अनुसंधान के लिए भी खुला है एजेंसी को प्रथम सूचना रिपोर्ट में लगाए गए आरोपों का समर्थन करने के लिए कोई सामग्री नहीं मिलने पर रिपोर्ट प्रस्तुत करनी होगी। यह संबंधित मजिस्ट्रेट के लिए खुला है कि वह रिपोर्ट को स्वीकार करे या आगे की अनुसंधान का आदेश दें। लेकिन यह स्पष्ट है कि मजिस्ट्रेट अनुसंधान एजेंसी को निर्देश नहीं दे सकता है। ऐसी रिपोर्ट प्रसतुत करें जो उनके विचारों के अनुरूप हो। यहां तक कि ऐसे मामले में जहां अनुसंधान एजेंसी द्वारा एक रिपोर्ट प्रस्तुत की जाती हे जिसमें पाया जाता है कि अभियोजन के लिए कोई मामला नहीं बनता है, मजिस्ट्रेट के पास रिपोर्ट से असमहत होने और संज्ञान लेने का अधिकार हैं लेकिन वह जांच एजेंसी को इस आशय की रिपोर्ट सौंपने का निदेश नहीं दे सकते कि अनुसंधान के दौरान एकत्र की गई सामग्री से आरापों का समर्थन किया गया है।

किशन सिंह बनाम बिहार राजय ख(1993)2 एस.सी.सी 16, में इस न्यायालय ने कहाः–

इस प्रकार धारा 193 को स्पष्ट रूप से पढ़ने पर जैसा कि यह वर्तमान में मौजूद है, एक बार जब मामला संहिता के तहत एक मजिस्ट्रेट द्वारा सत्र न्यायालय को सौंप दिया जाता है तो किसी अपराध का संज्ञान लेने के लिए मूल क्षेत्राधिकार वाले न्यायालय की शक्ति पर लगा प्रतिबंध उठा दिया जाता है। मजिस्ट्रेट द्वारा धारा 209 के तहत मामले को सत्र न्यायालय में सौंपने पर धारा 193 की रोक हटा दी जाती हे, जिससे सत्र न्यायालय को मूल क्षेत्राधिकार वाली अदालत का पूर्ण और निरंकुश क्षेत्राधिकार मिल जाता है, जिससे वह मामले का संज्ञान ले

सके। अपराध जिसमें उस व्यक्ति या व्यक्तियों को बुलाना शामिल होगा जिनकी अपराध के करने में संलिप्तता को प्रथम दृष्टया रिकॉर्ड पर उपलब्ध सामग्री से इकट्ठा किया जा सकता है।

निसार और अन्य बनाम् उ0प्र0 राजय ख(1995)2 एस.सी.सी 23, में इस न्यायालय द्वारा उपरोक्त निर्णय का पालन किया गया। जिस पर भी भगवाती द्वारा मजबूत निर्भरता रखी गई है। उस मामले में ही यह आयोजित किया गया थाः–

''8. अपीलकर्ताओं के दूसरे तर्क के संबंध में यह कहा जाना चाहिए कि संहिता की धारा 319 की सष्ट और स्पष्ट भाषा को ध्यान में रखते हुए, पहले उद्धृत कारण जो विद्वान न्यायाधीश के आदेश को बनाए रखने में उच्च न्यायालय के साथ मेल खाता था, वह है स्पष्ट रूप से गलत है। धारा 319(1) के तहत शक्ति का प्रयोग केवल उन मामलों में किया जा सकता है जहां जांच या विचारण के दौरान दर्ज किए गए साक्ष्य के दौरान आरोप–पत्र में आरोपित लोगों के अलावा अन्य व्यक्तियों की संलिप्तता सामने आती है। जैसा कि उस चरण में है अभी तक अपीलकर्ताओं तक नहीं पहुंच पाने पर संहिता की धारा 319 का इस्तेमाल करते हुए उन्हें बुलाया नहीं जा सकता था। ''

निसार (सुप्रा) भी इस तथ्य के मद्देनजर तत्काल मामले में लागू नहीं होता है कि विद्वान सत्र न्यायाधीश ने भी उक्त शक्ति का प्रयोग नहीं किया था। जैसा कि वहां पहले संकेत दिया गया है, इसने अनुसंधान अधिकारी को आरोप–पत्र दाखिल करने का निर्देश दिया जो कानून के खिलाफ हैं।

21. हम यह भी देख सकते हैं कि धर्मपाल और अन्य के मामले में निर्णय को ध्यान में रखते हुए यह प्रश्न कि क्या किशुन सिंह का निर्णय सही ढंग से किया गया है या नहीं। हरियाणा राज्य एवं अन्य ख(2004)13 एस.सी.सी 9, इस न्यायालय की संविधान पीठ के समक्ष विचाराधीन है।

22. इसके बावजूद किशुन सिंह मामले में इस न्यायालय द्वारा दिये गये फैसले को सही मानते हुए हम मामले को निपटाने के लिए आगे बढ़े हैं, जब तक अनुसंधान पूरी नहीं हो जाती या साक्ष्य रिकॉर्ड पर नहीं लाए जाते, तब तक विद्वान सत्र न्यायाधीश नागरिक प्रक्रिया संहिता की धारा 193 या अपराधिक प्रक्रिया संहिता की धारा 319 के तहत अने अधिकार क्षेत्र का प्रयोग नहीं कर सकते थे। इसलिए यहां पहले उल्लेखित कारणों से अपीलकर्ताओं के लिखाफ आरोप तय करने वाला आदेश रद्द किया जाने योग्य है। हम तद्नुसार निर्देश देते हैं। हालॉकि, हम इस तथ्य को ध्यान में रखते हुए कि अपीलकर्ता पहले ही पेश हो चुके हैं और अब फरार नहीं हैं, हम अनुसंधान अधिकारी को अनुसंधान के दौरान एकत्र की गई सामग्री के आधार पर अंतिम फॉर्म जमा करने का निर्देश देते हैं।

23. हम इस मामले के विशिष्ट तथ्यों और परिस्थितियों को ध्यान में रखते हुए, यह भी मान सकते हैं कि विद्वान सत्र न्यायाधीश यदि चाहते तो दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 319 के तहत अपने क्षेत्राधिकार का प्रयोग अपीलकर्ताओं तक कर सकते हैं। संबंधित स्थिति में उसमें निर्धारित प्रक्रिया का सहारा लिया जाना चाहिए।

24. उपरोक्त टिप्पणियों एवं निर्देश के साथ अपील स्वीकार की जाती है। कोई लागत नहीं,

अपील स्वीकृत।

(Mukesh Kumar Mishra)

Subjudge-I cum ACJM-I

Bikramganj, Rohtas

FORMATE-1

NAME OF THE HIGH COURT:- **PATNA HIGH COURT**

S. L	**Name of the Judicial Officers /Lawyer/ Translator**	**Citation of the Original English e-SCR Judgment**	**Cause Title**	**Case No.**	**Date of Judgment**	**No. of pages (of Original English e-SCR Judgment translatted)**
1	Sri Mukesh Kumar Mishra (Subjudge -I cum ACJM-I) Bikramganj, Rohtas	[2009] 8 S.C.R. 701	Jaswant & Others v. State of Rajasthan	Cri. Appeal No. 1013 of 2009	03 May 2009	13